परमाणु ऊर्जा

सस्ती, साफ बिजली
या
महाविनाश को बुलावा!

राकेश भारद्वाज

सीमित वितरण हेतु
जनहित में
पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
ए–124/6, दूसरी मंजिल
कटवारिया सराय, नई दिल्ली–16
द्वारा प्रकाशित
जनवरी, 2010

परिचय

हाल ही में (सितंबर 2009) अंतर्राष्ट्रीय एटमी ऊर्जा एजेन्सी (आईएईए) के महानिदेशक मोहम्मद अलबरदेई को मनमोहन सरकार ने ''इंदिरा गांधी शांति पुरस्कार'' से सम्मानित किया। मोहम्मद अलबरदेई नोबल पुरस्कार से भी सम्मानित हो चुके हैं। अब मनमोहन सरकार द्वारा उन्हें शांति पुरस्कार देना, निःसंदेह भारत सरकार की परमाणु महत्वाकांक्षाओं को दर्शाता है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा भी है कि ''भारत अब अपने एटमी कार्यक्रम में महत्वपूर्ण विस्तार करने वाला है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की प्रमुख भूमिका होगी।''

भारत सरकार ने अपने परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के विस्तार के लिए 15 नये परमाणु बिजली संयंत्र लगाने की मंजूरी दी है क्योंकि परमाणु ऊर्जा समर्थक ''साफ व सस्ती बिजली'' का दावा करते हैं इसलिए भारतीय जनमानस भी इस वादे के सम्मोहन में बंधा हुआ सा लगता है।

ऐसी परिस्थितियों में परमाणु ऊर्जा या एटमी बिजली की प्रासंगिकता पर बहस होना बहुत जरूरी है। परमाणु संयंत्र से जुड़ी हुई सुरक्षा संबंधी चिंताओं के साथ–साथ इसके आर्थिक तथा पर्यावरणीय पहलुओं को भी जानना बहुत जरूरी है।

आज परमाणु ऊर्जा को ऊर्जा क्षेत्र के बढ़ते संकट के इकलौते इलाज के रूप में पेश किया जा रहा है। परमाणु ऊर्जा को इसके समर्थक एक ऐसी जादुई छड़ी के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसके घुमाते ही सभी मुश्किलें दूर हो जायेंगी और सब कुछ बहुत अच्छा हो जायेगा। भारत जैसे विकासशील देश में जहां जनसाधारण की मूलभूत जरूरतें जैसे भोजन, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं वहां परमाणु ऊर्जा को प्राथमिकता देना समझ से बाहर है।

परमाणु शक्ति के शुरूआती दौर में देखे गये ''शांतिपूर्ण इस्तेमाल के सपने'' अब पूरी तरह धुंधला चुके हैं, वहीं दूसरी ओर परमाणु ऊर्जा से उत्पन्न खतरे बढ़ते जा रहे हैं। सैन्य उद्देश्यों के लिए दुरूपयोग का खतरा भी मौजूद है और यह खतरा अब बढ़ता जा रहा है। इसके अलावा परमाणु संयंत्रों पर आतंकवाद के संभावित हमलों का बड़ा खतरा भी हमारे सामने है। ग्लोबल वार्मिंग तथा परंपरागत ईंधन के इस्तेमाल से पर्यावरण को हो रहे नुकसान ने भी परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल को और ज्यादा महत्व दिया है। इसके पैरोकार तो यहां तक कह रहे हैं कि परमाणु ऊर्जा ही ग्लोबल वार्मिंग का एकमात्र सस्ता तथा सफल विकल्प है। मगर परमाणु ऊर्जा से जुड़े असुरक्षा के मुद्दों पर इसके समर्थक कोई बात नहीं करना चाहते। ''सस्ती तथा साफ बिजली'' की तेज रोशनी में ये मुद्दे उन्हें दिखाई नहीं दे रहे हैं।

दशकों पहले दुर्घटना रहित परमाणु रियक्टर का वादा अभी भी सिर्फ वादा ही बना हुआ है। आज मानवता के सामने 'ग्लोबल वार्मिंग' जैसा खतरा भी है। निःसंदेह यह 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती है, किंतु इस चुनौती से निपटने के लिए ऐसे विकल्प मौजूद हैं जो कि परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल के मुकाबले कम खतरनाक हैं। जो लोग परमाणु ऊर्जा को 'अमरता' या स्थायी विकल्प के तौर पर हमारे सामने रखते हैं वे दरअसल जनता की आंखों में धूल झोंकने का काम कर रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि परमाणु ऊर्जा में प्रयोग होने वाली ईंधन सामग्री 'यूरेनियम' भी उतनी ही सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं जितनी कि कोयला, तेल या प्राकृतिक गैस।

न सिर्फ सुरक्षा के लिहाज से परमाणु ऊर्जा ज्यादा खतरनाक विकल्प है बल्कि आर्थिक रूप से भी यह घाटे का सौदा है। हैरानी की

बात है कि हमारे प्रधानमंत्री जो कि एक बड़े अर्थशास्त्री होने के साथ–साथ विश्व बैंक के आला अफसर भी रहे हैं वह 'परमाणु ऊर्जा' के अर्थशास्त्र को क्यों नहीं समझ पा रहे हैं? एक तरफ तो वो खुले बाजार, खुली अर्थव्यवस्था का पुरजोर समर्थन करते है, वहीं दूसरी तरफ 'परमाणु ऊर्जा' जैसी महंगी तथा खतरनाक तकनीक को सरकारी आर्थिक मदद देने को भी तैयार हैं। हमारे प्रधानमंत्री जानते हैं कि दूसरे कई देशों में भी आर्थिक मदद की वजह से ही कंपनियां परमाणु ऊर्जा से मुनाफा कमा रही हैं। इसके अलावा पुराने हो चुके परमाणु रियक्टरों के लाइसेंस की अवधि का नवीनीकरण करवा लेना भी कंपनियों के लिए एक आकर्षक विकल्प है।

मगर कंपनियों का यह आकर्षण ही बड़ी दुर्घटना के खतरे की संभावनाओं को बढ़ा भी देता है। कई देशों ने परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण इस्तेमाल की सोच को अपनाया है तथा इसे बढ़ावा भी दिया है। मगर यह बात भी किसी से छुपी नहीं है कि इस सोच को 'परमाणु बम' बनाने की मंशा के रूप में ही देखा जाता है। भारत, पाकिस्तान, उ. कोरिया का उदाहरण हमारे सामने हैं।

सस्ती साफ बिजली या महाविनाश को बुलावा!

सस्ती तथा साफ'' बिजली की चमक ने परमाणु ऊर्जा के धंधे में लगे हुए लोगों तथा इसके समर्थकों को इस कदर अंधा कर दिया है कि इसमें छिपे हुए महाविनाश को वह देख नहीं पाते मगर इंसान द्वारा बनाई गई यह भस्मासुरी ताकत कैसे प्रलयकारी विनाश कर सकती है, इसकी झलक हम चेरनोबिल की दुर्घटना में देख सकते हैं। 26 अप्रैल 1986 को यूक्रेन के चेरनोबिल परमाणु संयंत्र में हुई दुर्घटना ने नागासाकी तथा हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम से ज्यादा विकिरण छोड़ा। चेरनोबिल का नाम इतिहास में सबसे भयानक नागरिक परमाणु दुर्घटना के रूप में दर्ज है। इस दुर्घटना में 56 लोग मौके पर ही मारे गये थे, तथा 6 लाख लोग रेडियोधर्मी विकिरण के शिकार हुए। रेडियोधर्मी पदार्थ दूर–दूर तक फैल गया। हजारों लोगों को इस रेडियोधर्मी प्रदूषण के कारण अपने घरों को छोड़कर जाना पड़ा। रेडियोधर्मी प्रदूषण का असर लंबे समय तक स्वास्थ्य पर बना रहता है। इस दुर्घटना में कितनी मौतें हुईं इसका सही आंकड़ा आज तक नहीं जाना जा सका है, मगर जानकारों के अनुसार 90,000 लोग इस दुर्घटना में मारे गये। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार सात लाख लोग आज भी इससे पीड़ित हैं। तीन लाख बच्चों को इलाज की जरूरत है तथा ज्यादातर बच्चे समय से पहले ही मौत का शिकार हो जायेंगे। ऐसी ही एक घटना 10 अप्रैल 2003 को हंगरी के पाक्स स्थित परमाणु ऊर्जा संयंत्र में हुई। इस घटना ने नागरिक परमाणु ऊर्जा के इतिहास की दो बड़ी घटनाओं के डरावने अनुभवों को फिर से याद दिला दिया तथा इसके साथ ही मार्च 1979 में हेरिसबर्ग तथा अप्रैल 1986 में चेरनोबिल में हुए विनाश की झलक भी दिखला दी।

रियक्टर के डिजाइन में असहनीय गलतियां, सुस्त निगरानी, गलत दिशा–निर्देश, दबाव वाली परिस्थितियों में निर्णय लेने की अक्षमता। इस सब के बावजूद रियक्टर की संजीदा तकनीक पर अंधा भरोसा? यह सब समस्याएं परमाणु ऊर्जा संयंत्रों से जुड़ी रही हैं। हेरिसबर्ग तथा चेरनोबिल के अलावा जापान, ब्रिटेन तथा जर्मनी के परमाणु ऊर्जा संयंत्रों को भी ऐसी ही समस्याओं का सामना करना पड़ा था।

एक प्रसिद्ध कथन है ''इंसान गलतियों का पुतला है।'' इसलिए जहां भी लोग काम करते हैं वे गलतियां भी करते हैं। एक के बाद एक हुई इन गलतियों के (जिन्हें परमाणु ऊर्जा के जानकार हमेशा ही व्याख्या से परे बताते हैं) मामले में इन संयंत्रों में काम करने वाले बड़े भाग्यशाली रहे कि इन गल्तियों ने चेरनोबिल जैसी दुर्घटना के भयंकर नतीजों को पैदा नहीं किया।

पाक्स परमाणु संयंत्र दुर्घटना

हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट के दक्षिण में 115 कि.मी. दूर पाक्स परमाणु ऊर्जा संयंत्र के दो नंबर ब्लाक के रियक्टर की ईंधन असेंबली जरूरत से ज्यादा गर्म होने के कारण बुरी तरह से टूट चुकी थी। इस प्रक्रिया से विकिरणशील गैस बहुत मात्रा में भट्टी वाले कमरे में जा रही थी। जहां से रियक्टर आपरेटर डर कर भाग चुके थे। बाद में इस गैस को बिना फिल्टर किये ही बाहर की हवा में उड़ा दिया गया। लगभग 14 घंटे की कड़ी मेहनत मशक्कत के बाद विकिरण से बचाव की पोशाक पहन कर तथा यंत्रों से सुसज्जित अधिकारी इस कमरे में दुबारा घुस सके। किसी भी यूरेनियम परमाणु रियक्टर में दुर्घटना के लिहाज से चेरनोबिल के बाद 'पाक्स' सबसे ज्यादा गंभीर दुर्घटना के लिए जाना जाता है। यद्यपि हंगरी की सीमाओं के बाहर इस घटना पर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। मगर तब उनके इस डर में और ज्यादा वृद्धि हो गई जब हंगरी के परमाणु विशेषज्ञों ने कुछ और विशेषज्ञों के साथ मिलकर इस दुर्घटना के ताने–बाने को फिर से बुना। जल्दी ही उन्हें इस बात का अंदाजा हो गया कि इस दुर्घटना के नतीजे इससे बहुत ज्यादा बुरे हो सकते थे। पाक्स में भी चेरनोबिल जैसी तबाही मच सकती थी और लाखों लोग 'साफ व सस्ती' एटमी बिजली में भस्म हो जाते।

पाक्स की इस दुर्घटना के बारे में विश्व समुदाय की न के बराबर चिंता कोई नई बात नहीं है। मगर इस घटना ने एक और नई शुरूआत की, जैसे पहली बार पश्चिमी यूरोप और पूर्वी यूरोप के रियक्टर की देखभाल करने वाली टीमों को संयुक्त रूप से इस गंभीर नाकामयाबी का जिम्मेदार ठहराया गया। संयंत्र को डिजाइन करने वाले इंजीनियर तथा इसको चलाने वाले आपरेटर इन टीमों के सदस्य थे। ये सभी 'विशेषज्ञ' जर्मन–फ्रेंच परमाणु ऊर्जा समूह फ्रेमाटोन ए.एम.पी. के सदस्य थे। फ्रेमाटोन को फ्रेंच एरिवा तथा जर्मन सीमेन्स कारपोरेशन की तरफ से 'आर्थिक मदद' भी मिलती थी। सोवियत तरीके से बने इस पाक्स परमाणु ऊर्जा संयंत्र की आपरेटर टीम तथा बुडापेस्ट में बैठे हंगेरियन परमाणु नियामक अथारिटी के विशेषज्ञ भी इस दुर्घटना के लिए कुछ हद तक जिम्मेदार थे मगर यह सभी लोग सस्ते में छूट गये।

रियक्टर भौतिकी के अनुसार परमाणु विस्फोट अचानक हो सकता है और इसकी एक के बाद एक लगातार अनियंत्रित प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं। अगर ऐसा हो जाता तो पाक्स तथा उसके आस–पास के इलाकों में नतीजे बहुत ही तबाही वाले तथा दिल दहलाने वाले होते।

भारत के परमाणु ऊर्जा संयंत्रों में भी इस तरह की दुर्घटनाएं होती रहती हैं मगर भारत सरकार ने इन दुर्घटनाओं के बारे में कभी भी कोई सूचना जारी नहीं की। मगर जानकारों के अनुसार अभी तक इस तरह की 300 से ज्यादा गंभीर घटनायें हो चुकी हैं जिसमें रेडियेशन रिसाव तथा मजदूरों को शारीरिक क्षति हुई हैं। भारत सरकार द्वारा परमाणु संयंत्रों की 'तगड़ी सुरक्षा' के दावों की कलई उस वक्त खुल गई जब 24 नवंबर 2009 को कर्नाटक के कैगा परमाणु संयंत्र में 55 कर्मचारी वॉटर कूलर का विकिरण प्रभावित पानी पीने से बीमार हो गये। इस बात का पता तब चला जब कर्मचारियों को पेशाब में दिक्कत महसूस हुई। उनकी पेशाब के सैम्पल जांच करने पर पाया गया कि वे विकिरण से प्रभावित हैं। परमाणु ऊर्जा विभाग के तत्कालीन प्रमुख अनिल काकोडकर ने इसे संयंत्र के ही किसी कर्मचारी की 'शरारत' बताया था। यह घटना अपने आप में बहुत चिंताजनक है और इस घटना से कुछ सवाल भी खड़े होते हैं जिनका जवाब परमाणु ऊर्जा के समर्थकों को देना ही पड़ेगा। पिछले दिनों डेविड कोलमेन हेडली तथा तहव्वुर राणा को संदिग्ध

आतंकी गतिविधियों में लिप्त होने के आरोपों में अमरीका में गिरफ्तार किया गया। इस घटना के बाद देश के सारे परमाणु संयंत्र 'उच्च स्तर की सुरक्षा' के अधीन थे। सभी अखबारों में इनकी गिरफ्तारी की खबर छपी। इन दोनों के पास कुछ कागज़ात भी मिले थे जिनमें भारत के कुछ परमाणु संयंत्रों का जिक्र था। इसलिए भारत सरकार ने सभी परमाणु संयंत्रों की सुरक्षा और तगड़ी कर दी थी। इस ''उच्च स्तर'' तथा ''तगड़ी सुरक्षा'' के साये में कैसे कोई व्यक्ति पीने के पानी में ट्रिटियम मिला सकता है? यह बात बहुत ही आश्चर्यचकित कर देने वाली है। इस घटना से कुछ सवाल भी खड़े होते हैं जैसे :–

पहला यह कि संयंत्र का कोई कर्मचारी ऐसी 'शरारत' क्यों करेगा? जिसमें दूसरे कर्मचारियों को शारीरिक नुकसान पहुंचे। हमारे तकनीकी तथा विज्ञान मंत्री का कहना है कि इसके पीछे किसी नाराज कर्मचारी का हाथ है। मंत्री जी का यह बयान भी परमाणु संयंत्रों में काम करने वाले कर्मचारियों की चयन प्रक्रिया पर गंभीर सवाल उठाता है कि आखिर संयंत्र में ऐसा क्या हो रहा है कि कर्मचारी नाराज हैं तथा अपने काम से असंतुष्ट हैं।

दूसरा यह कि ट्रिटियम बहुत ही मंहगी सामग्री है। एक ग्राम ट्रिटियम तैयार करने में तकरीबन एक लाख डॉलर की लागत आती है। इतनी दुर्लभ तथा कीमती सामग्री तक किसी भी कर्मचारी का आसानी से पहुंच जाना इस संस्थान की लापरवाही तथा इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार को ही दर्शाता है।

हमारे नेता 'भारतीय परमाणु कार्यक्रम' को राष्ट्रीय अस्मिता तथा सुरक्षा से जोड़ते हैं। देश की सुरक्षा के लिए चलाया जा रहा यह कार्यक्रम कितना सुरक्षित है इस बारे में नेताओं की चुप्पी उनकी अदूरदर्शिता तथा असंवेदनशीलता को ही दर्शाती है। वे जानते हैं कि 'सत्ता' में बने रहने के लिए 'तथाकथित' शांतिपूर्ण परमाणु कार्यक्रम कितना जरूरी है। वे इस मसले पर देश की जनता के बीच में लगातार डर व भ्रम की स्थिति को बनाये रखना चाहते हैं। कांग्रेस हो या बीजेपी इन दोनों मुख्य राजनीतिक दलों ने 'सत्ता' पाने के लिए और 'सत्ता' पर अपना कब्जा बनाये रखने के लिए भारत के तथाकथित शांतिपूर्ण परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम का सहारा लिया है। हमारे नेता परमाणु ऊर्जा को ही

एकमात्र विकल्प के रूप में जनता के सामने रखते हैं। बीजेपी ने हरियाणा में हुए विधानसभा चुनावों के लिए जारी अपने घोषणापत्र में परमाणु ऊर्जा संयंत्र स्थापित करने का वादा किया था। ये वही बीजेपी है जिसकी सरकार ने राजस्थान में पानी की मांग कर रहे किसानों पर गोलियां चलाईं थीं।

परमाणु ऊर्जा के समर्थक तथा हमारे राजनेता इन दुर्घटनाओं तथा हादसों से सबक सीखने की बात करते हैं वे परमाणु संयंत्रों की सुरक्षा प्रणाली को ज्यादा सुरक्षित बनाने का वादा करते हैं। मगर ऐसे हादसे पहले भी होते रहे हैं। ऐसी ही एक घटना 1991 में परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा संचालित राजस्थान में रावतभाटा हैवी वॉटर प्लांट में हुई। इस संयंत्र के एक कमरे में हैवी वॉटर से भरे हुए ड्रम रखे थे। इस कमरे में रंगाई–पुताई का काम होना था और इस काम को करने के लिए बाहर से मज़दूरों को बुलाया गया। मज़दूरों ने जब पानी के लिए नल को खोला तो उस नल में पानी नहीं आ रहा था इसलिए उन्होंने ड्रम में रखे पानी का इस्तेमाल किया। पुताई का काम खत्म करके मजदूरों ने अपने ब्रश तथा कूचियों को इसी पानी से साफ किया और यही नहीं अपने हाथ–मुंह धोने के लिए भी उन्होंने ड्रम में रखे पानी का ही इस्तेमाल किया। इसके बाद सभी मज़दूर अपना काम खत्म करके बाहर चले गये। जब यह काम चल रहा था तो उस दौरान कोई भी उच्च अधिकारी निगरानी के लिए वहां नहीं था। जब विकिरण ने अपना खतरनाक रूप दिखाना शुरू किया तब जाकर इन अधिकारियों की आंखें खुलीं मगर तब तक उस कमरे में इतिहास की सबसे मंहगी पुताई हो चुकी थी। काम करने वाले मजदूर बीमारियों से ग्रस्त होकर चुप्पी साध गये। चूंकि वे बाहर के अस्थायी मज़दूर थे इसलिए अंग्रेजी अखबारों की सुर्खियां नहीं बन सके। परमाणु ऊर्जा के कर्णधारों ने किसी तरह इस घटना को रफा–दफा किया और हमेशा की तरह इस घटना से सीखे गये सबक को भुला दिया।

परमाणु ऊर्जा के समर्थकों ने इन खतरों को बार–बार भुलाया है। मगर वो दिन दूर नहीं जब बार–बार भूल जाने की आदत एक महाविनाश को जन्म देगी और जब तक उन्हें इस बात का अहसास होगा तब तक बहुत देर हो चुकी होगी।

सस्ती परमाणु ऊर्जा : एक और सफेद झूठ

परमाणु ऊर्जा के बारे में सस्ती बिजली के दावे लगातार गलत साबित हुए हैं। अक्सर कहा जाता है कि ''यह पानी उबालने का सबसे खर्चीला (महंगा) तरीका है''। परमाणु रियक्टर बनाने की लागत हमेशा ही परमाणु उद्योग के अनुमान से तीन गुना ज्यादा रही है। अगर हम हाल ही में परमाणु रियक्टर निर्माण के अनुभवों की बात करें तो भारत का उदाहरण हमारे सामने है। जहां आखिरी दस रियक्टरों का निर्माण कार्य पूरा होते–होते, इनकी लागत तय बजट से औसतन 300 प्रतिशत ज्यादा हो गई है। फिनलैंड अपने नये रियक्टर के निर्माण पर तय राशि से 1.5 बिलियन यूरो ज्यादा खर्च कर चुका है।

अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के आंकड़ों के अनुसार ''विश्व में 27,000 मेगावाट्स की कुल क्षमता वाले 28 परमाणु ऊर्जा संयंत्र 2005 के अंत तक निर्माणधीन थे। इनमें से लगभग आधे संयंत्रों का निर्माण कार्य बहुत ही सुस्त रफ्तार से हो रहा है। इन्हें बनते हुए 18 से 30 साल हो गये हैं। इनमें से तो कुछ के बारे में किसी को विश्वास ही नहीं है कि यह संयंत्र कभी उत्पादन करेंगे। असल में इन्हें पूर्ण रूप से त्याग दिया गया है।

परमाणु ऊर्जा के बारे में जोर–शोर से प्रचार किया जाता है कि यह अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली बिजली के मुकाबले बहुत ही सस्ती है। परमाणु ऊर्जा के सस्ते होने के दो प्रमुख कारण बताये जाते हैः–

(1.) परमाणु तकनीक को व्यवहारिक बनाने के लिए शोध तथा विकास का सारा खर्चा सरकारें वहन करती हैं इसलिए इस खर्चे को परमाणु ऊर्जा द्वारा उत्पादित बिजली की कीमत में शामिल नहीं

किया जाता जबकि इसके विपरीत नवीकरणीय या स्थायी ऊर्जा के स्रोतों के लिए जो भी शोध तथा विकास कार्य होता है उसका खर्चा ज्यादातर निजी कंपनियां खुद वहन करती हैं इसलिए इस खर्चें को उत्पादन लागत में शामिल कर लिया जाता है।

(2.) परमाणु ऊर्जा संयंत्र अपने संपूर्ण कानूनी उत्तरदायित्वों का बीमा नहीं करवाते हैं और न ही परमाणु ऊर्जा संयंत्र के मालिक परमाणु महाविनाश के खतरे का जिम्मा लेते हैं बल्कि इसकी जिम्मेदारी पूरे देश पर होती है। अगर आपरेटर कंपनियां संयंत्र के असली खतरों के लिए परमाणु ऊर्जा संयंत्र का बीमा करवायें तो परमाणु ऊर्जा की कीमतों में कम से कम दोगुना इजाफा हो जायेगा।

स्विट्जरलैंड के नागरिक सुरक्षा विभाग ने अपने एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र में संभावित महाविनाश के खतरे की कीमत का संपूर्ण आकलन किया। इस आकलन के अनुसार इसकी कुल कीमत 3,400 बिलियन अमरीकी डॉलर है जबकि स्विस परमाणु ऊर्जा संयंत्र का सिर्फ 240 मिलियन अमरीकी डॉलर में बीमा हुआ है। इसका मतलब है कि उनके कानूनी उत्तरदायित्व का बीमा सिर्फ 0.007 प्रतिशत में हुआ है। असलियत में तो संभावित नुकसान के मुआवज़े की सारी जिम्मेदारी स्विस सरकार के कंधों पर है।

वैश्विक स्तर पर भी यही हाल है। अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के कानूनी उत्तरदायित्वों का बीमा 1.8 बिलियन अमरीकी डॉलर है। इसका मतलब है कि ज्यादातर परमाणु ऊर्जा संयंत्रों में संभावित नुकसान का 0.05 प्रतिशत का ही बीमा हुआ है। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो परमाणु रियक्टर दुर्घटना का 99.95 प्रतिशत हर्जाना संबंधित देश खुद अदा करेगा।

यह समझना मुश्किल है कि परमाणु ऊर्जा अपने खुद के खतरों का जिम्मा क्यों नहीं उठाती? दूसरे ऊर्जा स्रोतों की तरह इसे उत्पादन की लागत में शामिल क्यों नहीं करती? विशेषकर इस क्षेत्र में कीमतें तय करने में पारदर्शिता क्यों नहीं होती? यह कुछ सवाल हैं जिनका जवाब परमाणु ऊर्जा उद्योग तथा इनके समर्थकों के पास भी नहीं है।

परमाणु ऊर्जा को आर्थिक सहायता देते रहना सरकारों की विवशता बन चुकी है। जब कोई देश किसी तकनीक में भारी पैसा लगाता है तो

इसके बाद बहुत मुश्किल हो जाता है कि वे अपनी असफलताओं को स्वीकार करे और उस तकनीक का इस्तेमाल छोड़ दे क्योंकि ऐसा करने से कुछ प्रमुख लोगों को अपना मुँह छिपाना भी मुश्किल हो जायेगा तथा कुछ को तो नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। देश का 'स्वाभिमान' तथा मान सम्मान खतरे में पड़ जायेगा।

इसलिए इससे कहीं ज्यादा आसान है कि संबंधित तकनीक को आर्थिक मदद देते जाओ तथा उसकी सफलता का सरकारी उत्सव मनाते जाओ। भारत में पोखरन परमाणु परीक्षण के मामले में बिल्कुल यही हुआ है और अभी भी हो रहा है। भारत सरकार अपनी असफलता को स्वीकार न करके अभी भी पोखरन का उत्सव मनाये जा रही है।

भारत में परमाणु ऊर्जा संयंत्र स्थापित करने की इच्छुक बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस धंधे में मोटा मुनाफा तो कमाना चाहती है मगर परमाणु ऊर्जा संयंत्रों में किसी तरह की दुर्घटना होने पर मुआवज़े का जोखिम उठाना नहीं चाहती। इसलिए भारत सरकार ने बहुत ही जल्दबाजी में रातों रात प्रधानमंत्री की अमरीकी यात्रा (नवंबर 2009) से ठीक पहले विधेयक बना कर इसे मंत्रीमंडल (कैबिनेट) द्वारा मंजूर भी करवा लिया। इस विधेयक को इतनी जल्दी तैयार करवा कर मंत्रीमंडल द्वारा मंजूर करवाने के पीछे सरकार की मंशा साफ है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि भारत में अभी तक 1964 के एक कानून के अंतर्गत ही परमाणु कार्यक्रमों का विकास तथा विस्तार किया जा रहा है। इस कानून में संभावित परमाणु दुर्घटना या किसी आतंकी के आत्मघाती हमले के कारण होने वाले नुकसान तथा इसकी भरपाई का कोई उल्लेख नहीं है। न ही इस कानून में ऐसे किसी प्राधिकरण का प्रावधान है जो इस तरह के मामले निपटा सके। इसलिए अमरीका तथा अन्य देशों की विदेशी कंपनियां ऐसे किसी कानून के अभाव में कोई खतरा उठाने को तैयार नहीं है। वे चाहती हैं कि दुर्घटना या आत्मघाती हमला होने की स्थिति में उन पर मुआवज़े की भरपाई का बोझ न पड़े। इसीलिए अमरीका तथा अन्य परमाणु संपन्न देशों को खुश करने के लिए परमाणु दुर्घटना की स्थिति में, उसकी जिम्मेदारी तथा क्षतिपूर्ति विधेयक के मसौदे को प्रधानमंत्री की अमरीकी यात्रा से एक दिन पहले कैबिनेट ने मंजूरी दे दी।

इस विधेयक में परमाणु संयंत्रों की दुर्घटनाओं तथा हादसों की

स्थिति में होनेवाले नुकसान व उसकी भरपाई की व्याख्या और जिम्मेदारी तय की गई है। इस विधेयक के अनुसार बाहर से परमाणु ईंधन लाने के दौरान तथा भारत में किसी तरह की संभावित दुर्घटना होने पर मुआवजा देने की जिम्मेदारी भारत सरकार की होगी। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की भाषा में यह राशि अधिकतम 300 एसडीआर होगी। इसके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सदस्य देश ने जितना पैसा जमा किया है इस जमा राशि के अनुपात के आधार पर मुआवज़ा तय किया जाता है। इस विधेयक के अनुसार यह राशि 2400 करोड़ रखी गयी है। इसका मतलब है कि नुकसान चाहे जितना भी बड़ा क्यों न हो सरकार इससे ज्यादा मुआवज़ा नहीं देगी।

एक तरफ तो परमाणु उद्योग बिना थके इस बात पर जोर देता रहता है कि परमाणु ऊर्जा एकदम सुरक्षित है तथा परमाणु ऊर्जा संयंत्र चलाने में बहुत ही कम खतरे हैं। वहीं दूसरी तरफ वह इन ''कम खतरों'' की कीमत को उत्पादन लागत में शामिल करने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि परमाणु उद्योग यह जानता है कि ऐसा करने से परमाणु ऊर्जा प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पायेगी।

आमतौर पर बीमा क्षेत्र में 'कम खतरे' के लिए कम पैसा तथा 'ज्यादा खतरे' के लिए ज्यादा पैसा देना पड़ता है और अगर ऐसा है तो सवाल यह उठता है कि परमाणु ऊर्जा के लिए यह फर्क क्यों है? इसका मतलब है कि बीमा कंपनियां जिनका मुख्य धंधा ही खतरों को आंकना है, वे परमाणु दुर्घटना के खतरों को, परमाणु उद्योग तथा इसके समर्थकों के मुकाबले 'ज़्यादा बड़ा' तथा गंभीर मानती हैं और यह सचमुच चिंता का विषय है।

बिजली उत्पादन की दूसरी तकनीकों के विपरीत परमाणु ऊर्जा संयंत्रों को दशकों तक काम करने के बाद भी अपनी गलतियों के परिणामों पर विशाल राशि खर्च करनी पड़ती है। इसमें रेडियोएक्टिव कचरे को ठिकाने लगाना, बंद रियक्टरों पर निगरानी करना तथा भंग किये गए रियक्टरों के ''ठंडा होने'' के इंतजार की लंबी प्रक्रिया शामिल है।

एक बात तो साफ है कि राज्य द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता के बिना परमाणु ऊर्जा संयंत्र अपना अस्तित्व कायम नहीं रख

सकते। परमाणु तकनीक एक तरह से अजीब स्थिति में पहुंच गई है। मुनाफा कमाने के उद्देश्य से बाजार में इसके प्रवेश के पचास सालों के बाद, करोड़ों की आर्थिक मदद डकार जाने के बाद यह तकनीक आज भी राज्य की मदद पर निर्भर है इसीलिए परमाणु तकनीक का भविष्य अब भूतकाल बन चुका है जबकि नवीकरणीय ऊर्जा की अभी सिर्फ शुरूआत हो रही है।

त्रिकोण का चौथा कोण : सुरक्षा संबंधी मुद्दे

आज पूरी दुनिया में परमाणु ऊर्जा के समर्थक खुश दिख रहे हैं क्योंकि परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल पर चल रही बहस अब ठंडी हो चुकी हैं। वे अब बात–बात पर जलवायु परिवर्तन, तेल के दामों में वृद्धि तथा ग्लोबल वार्मिंग की बात करते हैं इसीलिए वे बड़े ''सौम्य तथा संयमित'' लहजे में 'सस्ती तथा साफ बिजली' के नारों को लगाते हैं। परमाणु आधारित बिजली उत्पादन के समर्थक विशेषतः एक बात से बहुत ही खुश हैं वह यह कि परमाणु नीति पर विचार–विमर्श 'सुरक्षा तथा सुरक्षा व्यवस्था' के स्थान पर अब अर्थव्यवस्था, पर्यावरण सुरक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के मुद्दे में बदल चुका है। अब वे जनता की सोच में भी इसी परिवर्तन को देखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि परमाणु ऊर्जा को भी जनता उसी रूप में देखे जैसे कि कोयला आधारित ऊर्जा तकनीक, पवन चक्की आधारित ऊर्जा तकनीक को देखती है। उनके अनुसार चूंकि 'साफ तथा सस्ती' बिजली सिर्फ परमाणु ऊर्जा संयंत्र ही दिला सकते हैं इसलिए सबसे ज्यादा महत्व भी जनता इसी तकनीक को दे। परमाणु ऊर्जा नीति पर चल रही बहस को इसके समर्थक सिर्फ आर्थिक रूप से तर्कसंगत, भरोसेमंद आपूर्ति तथा पर्यावरण के अनुकूल के त्रिकोण तक ही सीमित रखना चाहते हैं। इसके समर्थक इस बात से बिल्कुल चिंतित नहीं होते कि इस त्रिकोण में बहुत से ऐसे बिंदु अभी भी बाकी हैं जो परमाणु ऊर्जा के औचित्य पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। उनकी चिंता सिर्फ यह है कि परमाणु ऊर्जा में अचानक महाविनाश करने की जो अद्भुत क्षमता है उसे छिपाया कैसे जाये? इसलिए वे सुरक्षा तथा सुरक्षा व्यवस्था से जुड़े मुद्दों से लोगों का ध्यान भटकाने के लिए त्रिकोण के इन तर्कों का इस्तेमाल

करते हैं। यह परिस्थिति कोई संयोग नहीं है। ये परमाणु ऊर्जा के धंधे में लगे बड़े व्यापारियों तथा परमाणु ऊर्जा के उत्पादन में लगे हुए बड़े देशों द्वारा अपनायी गयी उस सोची–समझी तथा दृढ़निश्चयी रणनीति का परिणाम है जिसकी कोशिश में वे सालों से लगे हैं।

वे अपनी भटकाने वाली सफल चालों से जनता में इस मुद्दे पर बहस को ठंडा तो कर सकते हैं; किंतु वे बड़ी तबाही की संभावनाओं को कम नहीं कर सकते। इन खतरों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। ये खतरे हमेशा ही परमाणु ऊर्जा विवाद के प्राथमिक स्रोत बने रहेंगे। क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा विश्व के स्तर पर हमें ये कबूलना ही होगा : इनके खिलाफ खड़े हों या फिर इनके साथ मरें।

दुर्घटना रहित परमाणु संयंत्र ?

हेरिसबर्ग और चेरनोबिल के भयानक हादसों के बाद परमाणु उद्योग ने जनता का विश्वास दुबारा पाने के लिए ''दुर्घटना रहित परमाणु रियक्टर'' का वादा किया था। लगभग पच्चीस साल पहले रियक्टर निर्माताओं ने अपने इस वादे की योजना की शुरूआत की। उन्होंने ''अंर्तनिहित सुरक्षित परमाणु रियक्टर'' की अवधारणा को लोगों के सामने रखा। इसके अनुसार यह रियक्टर किसी भी दुर्घटना की स्थिति में खुद ही काम करना बंद कर देगा। अमरीकियों ने भविष्य के इस रियक्टर को ''आओ और ले जाओ'' का नाम दिया। अमरीकियों का दावा था कि इन रियक्टरों में केन्द्रीय भाग के पिघलने या रिसाव जैसी गंभीर दुर्घटना होने की कोई संभावना नहीं है। भले ही सभी 'कल्पनीय' दुर्घटनाएं एक साथ हो जायें तो भी ये रियक्टर अपने आप को स्वंय संभाल लेंगे और स्वंय ही काम करना बंद कर देंगे। एक भूतपूर्व उपराष्ट्रपति जो कि कभी परमाणु रियक्टर के धंधे में भी थे, उन्होंने अति उत्साह में इन रियक्टर के बारे में कहा ''आप बिना किसी डर या चिंता के घर जायें, खाना खायें, मीठी झपकी लें और वापिस आकर इस पर ध्यान दें''। उनका यह अनावश्यक कथन पहले की तरह आज भी महज एक औपचारिक बयान है जो कि पूरी तरह से आने वाली पीढ़ियों के खिलाफ है। 1986 में जर्मन तकनीक इतिहासकार जोआकिम रादकाऊ ने ''दुर्घटना रहित परमाणु ऊर्जा संयंत्र'' को सिर्फ कपोल कल्पना बताया था, उनका कहना था ''ये ख्याली पुलाव

पकाने जैसा है जो न कभी पकेगा और न ही कभी खाया जायेगा''।

वादे, दावे और इंतजार

परमाणु ऊर्जा के समर्थक लगातार एक के बाद एक वादे तथा दावे करते रहते हैं। अब यूरोपियन परमाणु ऊर्जा समुदाय (यूराटोम) तथा परमाणु ऊर्जा संयंत्र चलाने वाले देश ''चौथी पीढ़ी'' के रियक्टर के बारे में बात करने लगे हैं। वे इसे भविष्य की तकनीक कहते हैं। उनका दावा है कि यह रियक्टर ''नवपरिवर्तनकारी सुरक्षा प्रणाली'' से सुसज्जित हैं जबकि इससे पहले 'अंर्तनिहित सुरक्षित परमाणु संयंत्र'' दुर्घटना रहित रियक्टर संबंधी वादा अभी भी सिर्फ वादा ही बना हुआ हैं। अब वे ''चौथी पीढ़ी'' के रियक्टर को लेकर आये हैं। इन रियक्टर के बारे में उनका दावा है कि ये आर्थिक रूप से ज्यादा सस्ते, छोटे तथा सैन्य इस्तेमाल के लिए कम कारगर होंगे। उनका दावा है कि जनता भी इन्हें कबूल करेगी। इस श्रृंखला के पहले रियक्टर द्वारा साल 2030 के आस–पास बिजली उत्पादन शुरू करने की उम्मीद है। यह एक सरकारी बयान है, गैरसरकारी रूप से कुछ जाने–माने समर्थकों के अनुसार इस संयंत्र के साल 2040 या 2045 तक शुरू होने की उम्मीद है। इससे पहले 1970 में परमाणु वैज्ञानिकों ने सन् 2000 तक इन से बिजली उत्पादन शुरू करने का वादा किया था। मगर आज वे यह यह बताने से जी चुरा रहे हैं कि इन रियक्टर से 21वीं सदी के मध्य से पहले बिजली उत्पादन नहीं हो सकता।

भारत में भी परमाणु ऊर्जा के बारे में बढ़ा–चढ़ाकर दावे किये जाते रहे हैं। उदाहरण के लिए 1954 में परमाणु ऊर्जा विकास के लिए तीन चरणों के एक विशाल कार्यक्रम की घोषणा की गई। उस वक्त परमाणु ऊर्जा के समर्थकों ने दावा किया था कि 1980 तक 8,000 मेगावाट एटमी बिजली का उत्पादन किया जायेगा। समय बीतता गया तथा परमाणु ऊर्जा के समर्थकों के दावे, वादे तथा अनुमान भी बढ़ते गये। 1962 में अनुमान लगाया गया कि 1987 तक 20,000 से 25,000 मेगावाट एटमी बिजली मिलेगी। इसके बाद भारत के परमाणु ऊर्जा विभाग ने 1969 में दावा किया कि सन् 2000 तक देश की क्षमता 43,500 मेगावाट एटमी बिजली की होगी। हैरानी की बात यह है कि यह सब तब कहा गया

जब देश में एक यूनिट एटमी बिजली भी पैदा नहीं की जा रही थी। मौजूदा समय में 17 परमाणु ऊर्जा रियक्टर सिर्फ 4120 मेगावाट बिजली पैदा कर रहे हैं, जो कि लगाये गये परमाणु ऊर्जा संयंत्रों की क्षमता का सिर्फ 2.9 फीसदी हैं।

भारत और अमरीका में परमाणु समझौता होने के बाद परमाणु ऊर्जा समर्थक फिर से जोश में आ गये हैं। उन्होंने साफ व सस्ती बिजली के नगाड़ों को फिर से पीटना शुरू कर दिया है। अब दावा किया जा रहा है कि 2032 तक भारत की क्षमता 63,000 मेगावाट एटमी बिजली की हो जायेगी। इसके लिए भारत सरकार ने उन जगहों का चयन कर लिया है जहां 15 नये परमाणु ऊर्जा संयंत्र लगाये जायेंगे। ये जगह हैं कुम्हारिया (हरियाणा), काकरपार, चहाया (गुजरात), कोवाडा (आंध्रप्रदेश), हरीपुर (प. बंगाल), कुडानकुलम (तमिलनाडु) तथा जैतापुर (महाराष्ट्र)।

''इस तरह परमाणु उद्योग ने चुपचाप अपने ही किए गये वायदों को तोड़ दिया हैं। आज हर तरफ यही आवाज सुनने को मिल रही हैं कि ''हमारे परमाणु ऊर्जा संयंत्र दुनिया में सबसे सुरक्षित संयंत्र हैं''। यह नारा भारत में ही नहीं हर उस देश में बड़े विश्वास के साथ उछाला जाता है जो परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल को बढ़ावा देने में लगे हैं। इस बात की तरफ किसी का भी ध्यान नहीं जाता कि जो भी परमाणु ऊर्जा संयंत्र 1960–70 के दशक में शुरू किये गये हैं, वे 1950–60 की तकनीकी तथा जानकारी के आधार पर बनाये गये हैं। क्या वास्तव में इन संयंत्रों को समुचित सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध है? यह सवाल अभी भी हम सभी के सामने बना हुआ है। मगर दावों, वादों तथा ''सुरक्षित परमाणु संयंत्रों'' के नारों के शोर में यह सवाल दबता जा रहा है। ऐसा कोई राष्ट्रीय 'परमाणु समुदाय' नहीं है जो अपने परमाणु संयंत्रों के बारे में या विश्व तकनीकी के बारे में सर्वश्रेष्ठता का दावा कर सके। पूर्वी यूरोप में भी यह दावा लगातार किया जाता रहा है कि उनके सोवियत तरीके के रियक्टर पश्चिमी सुरक्षा मानकों से ज़्यादा अच्छे हैं। उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि उनके रियक्टर में दुर्घटना का खतरा कम है मगर इस सरकारी बयान पर कभी किसी औपचारिक समझौते की जरूरत नहीं समझी गयी। लोकप्रिय संदेश यही है कि चिंता करने की या डरने की कोई वजह नहीं है। फ्रांस, अमरीका, स्वीडन, जापान, द. कोरिया में भी

परमाणु ऊर्जा समर्थक यही दावा कर रहे हैं कि उनके ''परमाणु ऊर्जा संयंत्र बिल्कुल सुरक्षित'' हैं।

भारत में भी परमाणु ऊर्जा आयोग के अधिकारी 'विश्वस्तरीय' 'विश्वसनीय' प्रेशराइज़्ड हैवी वाटर रियक्टर बनाने का दावा कर रहे हैं। उनका दावा है कि ''भारत के फास्ट ब्रीडर रियक्टर दुनिया में सबसे आधुनिक हैं। हमारे एडवांस हैवी वाटर रियक्टर दुनिया में सबसे अद्भुत तथा निराले हैं।'' परमाणु ऊर्जा आयोग को उम्मीद है कि प्राकृतिक यूरेनियम की कमी के चलते उनके रियक्टर द्वारा अपनी क्षमतानुसार उत्पादन नहीं कर पाने की समस्या को 2012–2013 तक सुलझा लिया जायेगा। अब परमाणु ऊर्जा आयोग परमाणु ईंधन के रूप में थोरियम के इस्तेमाल के बारे में बड़े–बड़े दावे कर रहा है। उनका दावा है कि ऊर्जा बनाने के लिए थोरियम की तकनीक पर महारत हासिल कर ली गई है। परमाणु ऊर्जा समर्थक लगातार बड़े–बड़े दावे करके जो सब्जबाग दिखा रहे हैं, इससे सभी संतुष्ट हैं, सभी खुश हैं।

आज सचमुच इस बारे में चिंता करने का राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर गिरता ही जा रहा है। परमाणु जगत की इस चुप्पी पर मानवता को क्या कीमत चुकानी होगी यह गंभीर सवाल सब के सामने बना रहेगा। सारी दुनिया में परमाणु ऊर्जा के समर्थक सुरक्षा के ''उच्च मापदंड़ों'' का श्रेय खुद ले रहे हैं मगर इस बात को वह भी भूल जाते हैं कि इस क्षेत्र में जो भी प्रगति हुई है उसके पीछे परमाणु विरोधी आंदोलन की मजबूती भी है और जनता के जागरूक होने के पीछे इस आंदोलन के अड़ियल संशयपूर्ण रवैये का बड़ा हाथ है। इस विचारधारा के अनुसार आज खासकर यूरोपीय देशों की जनता में जागरूकता का स्तर बढ़ा है। लोग परमाणु ऊर्जा के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी रखते हैं। जनता की इस जानकारी में बढ़ोत्तरी का एक बड़ा कारण परमाणु ऊर्जा के बारे में खोजपरक तथा दृढ़ जिज्ञासापूर्ण रवैया है। जनता के इसी खोजपरक रवैये ने अक्षम रियक्टर आपरेटर को मजबूर कर दिया है कि वह दुर्घटनाओं से बचने के लिए और ज्यादा प्रगतिशील तथा उन्नत सुरक्षा उपायों को लागू करे। इसका मतलब साफ है कि अगर जनता की जागरूकता का स्तर गिरेगा तो रियक्टर की सुरक्षा का स्तर भी गिरेगा।

भारत के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। भारत के महत्वाकांक्षी परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के बारे में जनता तक सही जानकारी पहुंचाना बहुत जरूरी है जब कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम को विस्तार देने की घोषणा कर चुके हैं। इन परिस्थितियों से और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है कि जनता के बीच में काम कर रहे जन संगठन परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के खतरों के बारे में जनता को जागरूक करें।

चेरनोबिल तबाही के 25 साल बाद सुरक्षा संबंधी प्रयास अब कैसे दिखते हैं? यूक्रेन के परमाणु ऊर्जा संयंत्र में दुर्घटना के बाद जनता का ध्यान इस ओर गया। सवाल यह उठता है कि क्या परमाणु रियक्टर की सुरक्षा को और ज्यादा चुस्त–दुरूस्त किया गया है? या फिर बिल्कुल इसके उलट एक बड़ी दुर्घटना होने का खतरा अभी भी हमारे सामने है।

आत्मघाती हमला : संकट का एक नया रूप

11 सितंबर 2001 में न्यूयार्क के जुडवां टावरों पर यात्री विमान द्वारा आत्मघाती हमले ने सारी दुनिया के साथ–साथ परमाणु जगत को भी हिला कर रख दिया है। परमाणु जगत में इस तरह की घटना के बारे में किसी ने सोचा भी नहीं था। मगर अब ये खतरा परमाणु जगत पर भी मंडरा रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि इस हमले ने परमाणु शक्ति के इस्तेमाल पर दुबारा सोचने के लिए हमें मजबूर कर दिया है। अमरीका की जेल में बंद अलकायदा के दो नेताओं ने यह स्वीकार किया है कि अमरीका के परमाणु ऊर्जा संयंत्र भी उनके निशाने पर थे। इन लोगों ने अपने बयान में कहा है कि हड़सन नदी के किनारे पर स्थित इंडियन प्वाइंट पॉवर प्लांट के दो नंबर रियक्टर ब्लाक को इन्होंने हमले के लिए चिन्हित भी कर लिया था। इस हमले की योजना को उन्होंने इसलिए त्याग दिया क्योंकि उन्हें डर था कि जिस हवाई जहाज से वो इस एटमी ऊर्जा संयंत्र पर हमला करते वो जहाज कहीं एंटी एयरक्राफ्ट मिसाइल का निशाना न बन जाये। परमाणु ऊर्जा संयंत्रों से जुड़े हुए खतरों को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि हम इन पर हमले की धमकियों को और भी ज्यादा गंभीरता से लें। इन हमलों के परिणाम बहुत ज्यादा भयानक तथा नुकसान पहुंचाने वाले होंगे।

यह पूरी तरह से सच है कि कोई भी रियक्टर ईंधन से भरे एक बड़े यात्री विमान के आत्मघाती हमले से निपटने के लिए तैयार नहीं है। न्यूयार्क तथा वॉशिंगटन पर इन हवाई हमलों के बाद रियक्टर आपरेटरों ने भी इस भयानक सच्चाई को स्वीकार किया है। ज्यादातर रियक्टर छोटे या लड़ाकू जहाजों की संभावित टक्कर को ध्यान में रखते हुए

बनाये गये हैं। कुछ रियक्टरों में एंटी टैंक राकेट लांचर के हमलों से निपटने की योजना भी बनाई गई है। किंतु ईंधन से भरे बड़े यात्री विमान की इन रियक्टरों से टकराने की संभावना के बारे में कोई सपने में भी नहीं सोच सकता था। यह संभावना रियक्टर बनाने वाले इंजीनियरों की कल्पना से भी बाहर थी।

भारत भी पिछले कुछ सालों से आतंकवाद का शिकार रहा है। संसद तथा मुंबई पर आत्मघाती हमलों ने भारतीय जनता को हिला कर रख दिया था। इस तरह के हमलों से निपटने के खोखले सरकारी दावों की सच्चाई आम आदमी भी जानता है। हमारा पड़ोसी देश पाकिस्तान कट्टरपंथी तालिबानी लड़ाकों से जूझ रहा है। और अभी हाल ही में पाकिस्तान के कामरा स्थित परमाणु प्रतिष्ठान पर तालिबानी हमला इस डर को और बढ़ा देता है। तालिबानियों ने भारत पर हमले करने की धमकी दी है। आज आतंकवाद किसी एक देश की सीमा तक ही सीमित नहीं हैं। ऐसे में सवाल यह उठता है कि इन बदली हुई खतरनाक परिस्थितियों में हमारे प्रधानमंत्री नये परमाणु ऊर्जा संयंत्रों को लगाने के लिए उतावले क्यों हो रहे हैं? देश की जनता की जिंदगी को क्यों उन्होंने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों गिरवीं रख दिया है। मगर उदारवाद तथा खुले बाजार के इस दौर में हम अपने प्रधानमंत्री से उम्मीद भी क्या रखें?

परमाणु ऊर्जा संयंत्रों पर आत्मघाती हमले की संभावनाओं ने कई और रास्तों को भी खोल दिया है जिन पर ध्यान दिया जाना अब जरूरी हो गया है। इसने एक ऐसी कड़वी सच्चाई को हमारे सामने खड़ा कर दिया है जिससे हम मुंह नहीं मोड़ सकते; क्योंकि आत्मघाती हमले की योजना बनाने वाले जानते हैं कि एक 'सफल' हमले से वह लाखों लोगों को अपना शिकार बना सकते हैं तथा साथ ही साथ दूसरे परमाणु ऊर्जा संयंत्रों को भी बंद करा सकते हैं। इससे वे एक ऐसे आर्थिक जलजले को पैदा कर सकते हैं जिसके सामने 11 सितंबर के हमलों के नतीजे भी फीके पड़ जायें। अगर वे बड़ी परमाणु दुर्घटना करवाने के उद्देश्य में असफल भी हो जाते हैं तब भी नतीजे डरावने ही होंगे क्योंकि इसके बाद जनता में तीखी प्रतिक्रिया होगी जो परमाणु ऊर्जा पर चल रही बहस में आग में घी डालने का काम करेगी तथा सभी परमाणु ऊर्जा संयंत्रों को न सही तो कुछ को तो बंद करा ही देगी।

परमाणु शक्ति : एक दोमुँहा साँप

परमाणु शक्ति एक दोमुँहे साँप की तरह हैं। भले ही आज इसके शांतिपूर्ण इस्तेमाल की वकालत बहुत जोर–शोर से की जा रही है मगर इसके सैन्य इस्तेमाल की मज़बूत संभावना को नकारा नहीं जा सकता। 1945 में अमरीका द्वारा हिरोशिमा तथा नागासाकी पर परमाणु बम गिराये जाने के विनाशक तथा प्रलयकारी परिणाम दुनिया अभी तक भूली नहीं हैं। अमरीका ने ही सबसे पहले बम के रूप में इस तकनीक का बर्बर इस्तेमाल किया था। जापान पर परमाणु बम के हमले के बाद अमरीका ने फिर से अपना दोहरा–चरित्र दिखाया तथा 1953 में ''शांति के लिए परमाणु'' कार्यक्रम की घोषणा की। इस कार्यक्रम को अमरीका ने इसलिए शुरू किया क्योंकि उसे डर था कि दूसरे देश परमाणु हथियार बनाने के कार्यक्रम को शुरू न कर दें।अमरीका ने परमाणु तकनीक के शांतिपूर्ण इस्तेमाल के लिए परमाणु ऊर्जा बनाने पर पहल की तथा दूसरे कई देशों से इसके लिए सहयोग करने का वादा किया। परमाणु बम बनाकर अमरीका 'महाशक्ति' का रूतबा हासिल कर चुका था। दूसरे कई देश भी 'महाशक्ति' का रूतबा हासिल करना चाहते थे और देखते ही देखते द्वितीय महायुद्ध के कुछ सालों बाद सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन ने भी परमाणु हथियार बना लिए। 1957 में अंतर्राष्ट्रीय एटमी ऊर्जा एजेन्सी की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य बिजली उत्पादन के लिए परमाणु तकनीक को बढ़ावा देने के साथ–साथ अन्य देशों को परमाणु हथियार विकसित करने से रोकना था। 1970 में परमाणु अप्रसार संधि के प्रभाव में आने के बावजूद इज़रायल, भारत तथा दक्षिण अफ्रीका ने परमाणु हथियार बना लिये। बाद में इस सूची में पाकिस्तान भी शामिल हो गया।

भारत, पाकिस्तान, इज़रायल परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने से मना कर चुके हैं। उत्तरी कोरिया की सरकार भी परमाणु हथियार बनाने का दावा कर चुकी है। ये सारी घटनायें इस बात को और मज़बूती से दर्शाती हैं कि परमाणु तकनीक के शांतिपूर्ण इस्तेमाल तथा सैन्य इस्तेमाल को अलग–अलग नहीं किया जा सकता।

अफगानिस्तान तथा इराक में अमरीकी फौज की घुसपैठ से वे देश भी एटम बम बनाने की कोशिशों में लग गये हैं जिनके पास अभी तक परमाणु हथियार नहीं हैं। कई विशेषज्ञों के अनुसार यह घटनाक्रम कई और देशों को परमाणु शक्ति संपन्न बनने के लिए प्रेरित करेगा। उत्तरी कोरिया की सरकार ने यह घोषणा कर दी है कि वह परमाणु बम बनाने के अपने लक्ष्य में सफल हो चुकी है। अमरीका ने जिस तरीके से अपनी क्रूज मिसाइलों तथा परंपरागत बमों से इराक को पूरी तरह बर्बाद करके सद्दाम हुसैन की सरकार को पलट दिया था इससे उत्तरी कोरिया समेत कई देश यह जान गये हैं कि परंपरागत युद्ध में वह अमेरिका से जीत नहीं सकते। इराक जैसा हाल कहीं उनका न हो जाये इस डर से भी उत्तरी कोरिया जैसे देश परमाणु बम बनाने की ओर प्रेरित हुए। इस कड़ी में अगला देश ईरान है। ईरान अभी तो अपने परमाणु कार्यक्रम को शांतिपूर्ण तथा अपनी ऊर्जा की जरूरतों को पूरा करने वाला बता रहा है। लेकिन यह सभी घटनायें परमाणु तकनीक से जुड़ी हुई मूल समस्याओं की तरफ इशारा करती हैं जैसे इसके सैन्य तथा नागरिक इस्तेमाल को अलग–अलग नहीं किया जा सकता। हर वह देश जो नागरिक परमाणु तकनीक से लैस है दावा करता है कि वह सिर्फ शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए अपना परमाणु कार्यक्रम चला रहा है। और इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय परमाणु एजेंसी भी इसे सहयोग दे रही है। मगर सच्चाई यह है कि ऐसे सभी देश अपने खुद के परमाणु बम बनाने में सक्षम हैं और वो दिन दूर नहीं जब राजनैतिक परिस्थितियां बदलते ही ये देश भी परमाणु बम के मालिक बन जायें। वर्तमान समय में 31 देशों के पास 'नागरिक परमाणु तकनीक' है परंतु जिस तरह से 'परमाणु निर्वाण' की आंधी चल रही है इस गिनती में बढ़ोतरी होती जायेगी और तब इसके सैन्य इस्तेमाल पर रोक लगाना भी कठिन हो जायेगा।

परमाणु ऊर्जा का भ्रमजाल तथा जलवायु परिवर्तन का संकट

परमाणु उद्योग आज जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग (धरती का बढ़ता तापमान) को भुनाने में लगा है। वह इसे जबरदस्त मुनाफा कमाने के मौके के रूप में देख रहा है। इसीलिए परमाणु उद्योग बहुत ही आक्रामक तरीके से परमाणु तकनीक को एकमात्र 'स्वच्छ' तकनीक के रूप में प्रचारित कर रहा है। आज बहुत ही जोर–शोर से परमाणु उद्योग तथा इसके समर्थक ये दावे कर रहे हैं कि परमाणु ऊर्जा पूरी तरह से सुरक्षित तथा आर्थिक रूप से टिकाऊ है और ये दुनिया की तेजी से बढ़ती हुई बिजली की जरूरतों को पूरा कर देगी। मगर ये दावे सच्चाई से नज़रें चुराने के अलावा और कुछ नहीं है।

असलियत तो यह है कि परमाणु ऊर्जा ने जलवायु परिवर्तन के संकट से निपटने के लिए किये जाने वाले जरूरी उपायों को कमजोर ही किया है। इसने ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों तथा ऊर्जा की क्षमताओं में बढ़ोतरी के लिए जरूरी निवेश का रूख अपनी तरफ मोड़ लिया है। जहां तक जलवायु परिवर्तन के संकट से निपटने की बात है तो परमाणु ऊर्जा भी तय समय सीमा में ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में जरूरी कटौती नहीं कर सकती और न ही यह तकनीक वांछित परिणाम दे सकती है क्योंकि परमाणु ऊर्जा द्वारा उत्सर्जन में कटौती बहुत ही कम मात्रा में होगी। आर्थिक रूप से तो यह मंहगी होगी ही साथ ही साथ इसमें समय भी बहुत लगेगा जबकि इसके विपरीत नवीनीकृत ऊर्जा की क्षमताओं में और ज्यादा सुधार करके हम जलवायु परिवर्तन से समय पर निपट सकते हैं। इससे हम परमाणु ऊर्जा द्वारा थोपे गये खतरों से तो बचेंगे ही, साथ ही परमाणु प्रक्रिया के हर चरण में जो पर्यावरणीय,

स्वास्थ्य तथा सुरक्षा संबंधित चिंतायें हैं उनसे भी छुटकारा मिल जायेगा।

मगर आश्चर्यजनक रूप से विशेषज्ञों के अति–उत्साहित वर्ग ने बहुमत से इस बात को मान लिया है कि ग्लोबल वार्मिंग एक 'असली' खतरा है। धरती के बढ़ते तापमान को मानवीय जीवन तथा पारिस्थितिकी ताने–बाने के लिए सहन योग्य बनाये रखना जरूरी है। इसका मतलब है कि औद्योगिक काल से पहले जो तापमान था, उसमें 2 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा वृद्धि न हो। जलवायु विशेषज्ञों की सलाह है कि औद्योगिक देश 2050 तक उत्सर्जन में 80 प्रतिशत तक की कमी करें। जो देश तेजी से विकसित देशों की श्रेणी में आना चाहते हैं उनके लिए भी ज़रूरी है कि वे अपने उत्सर्जन में जबरदस्त कटौती करें और ऐसा करने के लिए परमाणु ऊर्जा को ही एकमात्र विकल्प के रूप में पेश किया जा रहा है। मगर सवाल यह उठता है कि क्या परमाणु ऊर्जा में ये काबिलियत है कि वो ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को सीमित रख सके। इस तथ्य से परिस्थिति और भी ज्यादा विकट हो गयी है कि ग्लोबल वार्मिंग तथा परमाणु संयंत्रों की गंभीर दुर्घटना की संभावना– ये दोनों अलग किस्म के खतरों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के आंकड़ों के अनुसार, सन् 2005 के अंत तक विश्व में कुल 443 परमाणु रियक्टर एटमी ऊर्जा बनाने की प्रक्रिया में लगे थे। इन सबकी बिजली उत्पादन की कुल क्षमता 3,70,000 मेगावाट्स है। पिछले कुछ दशकों से खासकर पश्चिमी औद्योगिक देशों में परमाणु गतिविधियों में ठहराव आया है। सन् 2030 तक इस स्थिति में ज्यादा परिवर्तन की उम्मीद नहीं है। वैश्विक स्तर पर उत्पादन में औसतन 600 मेगावाट्स सालाना बढ़ोतरी की उम्मीद है। चूंकि पुराने संयंत्र बंद हो रहे हैं तथा तीन या चार परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के लगने की उम्मीद है इसलिए परमाणु ऊर्जा की क्षमता में 4000 से 5000 मेगावाट्स सालाना बढ़ोतरी होगी। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के अनुसार अगले कुछ सालों में बिजली की मांग में अभूतपूर्व बढ़ोतरी होगी। यद्यपि परमाणु ऊर्जा द्वारा उत्पादित बिजली जो कि 2002 में 17 प्रतिशत थी, 2030 में घटकर महज 9 प्रतिशत रह जायेगी। लेकिन 2005 के लिए ''न्यूक्लियर इंजीनियरिंग इंटरनेशनल'' पत्रिका में छपे आंकड़े कुछ अलग तस्वीर पेश करते हैं। इसमें इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया है कि

उस समय तक परमाणु ऊर्जा की प्रक्रिया में लगे 79 रियक्टर 30 साल की अपनी समय सीमा को पार कर लेंगे इसलिए यह असंभव लगता है कि ये रियक्टर अगले 20 सालों तक इसी संख्या में काम करते रहें। इन रियक्टरों के बंद होने तथा इनमें काम रुकने की वजह से अगले 10 सालों में लगभग 80 नये रियक्टरों को योजनाबद्ध तरीके से निर्माण करके चालू करना पड़ेगा। इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए प्रत्येक छः हफ्ते में एक रियक्टर लगाना पड़ेगा तथा इन 10 सालों के बाद 200 रियक्टरों को ऊर्जा उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल करने की जरूरत पड़ेगी, यानि 18 दिनों में एक रियक्टर। इस आकलन से तो यह भ्रमजाल ही लगता है कि परमाणु ऊर्जा का इस्तेमाल जलवायु परिवर्तन के संकट से निपटने के लिए किया जा सकता है और अगर यह सभी रियक्टर शुरू हो गये तो इसके अनेक प्रकार के प्रभाव देखने में आयेंगे, जिसके बारे में परमाणु उद्योग ने आँखें मूंद रखी है। उदाहरण के तौर पर–

- नये रियक्टर लगाने से सारी दुनिया में संभावित दुर्घटना के खतरे और ज्यादा बढेंगे।
- तनावग्रस्त क्षेत्रों के साथ–साथ विकसित तथा विकासशील देशों में फौज तथा आतंकी हमलों के लिए नये निशानों का विकास होगा।
- परमाणु कचरा निपटाने की समस्या ज्यादा विकराल रूप ले लेगी।
- गैरकानूनी परमाणु अस्त्रों का खतरा भी बढ़ेगा।
- आर्थिक संसाधनों को परमाणु ऊर्जा के विस्तार में झोंक देने की वजह से पूरी दुनिया में गरीबी हटाने का कार्यक्रम खतरे में पड़ जायेगा।

सच तो यह है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती का महत्वाकांक्षी लक्ष्य परमाणु ऊर्जा के बिना भी प्राप्त किया जा सकता है। एक आकलन के अनुसार 21वीं सदी के मध्य तक कार्बन डायोक्साईड गैस के उत्सर्जन में 40 से 50 बिलियन टन तक कटौती संभव है जबकि जरूरत 25–40 बिलियन टन की है। मगर हम कुछ शर्तों का पालन करें तो उत्सर्जन कटौती के इस लक्ष्य को पाया जा सकता है जैसेः–

- इमारतों में ऊर्जा की कार्यकुशलता को बढ़ाना।
- औद्योगिक ऊर्जा तथा सामग्री की कार्यकुशलता को उपलब्ध

तकनीक के स्तर तक बढ़ाना।

- ☐ ऊर्जा की कार्यकुशलता का स्तर परिवहन क्षेत्र के अनुसार बढ़ाना।
- ☐ ऊर्जा क्षेत्र में कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए तय राशि का उत्पादन तथा व्यवहारिक उपयोग के लिए बेहतर इस्तेमाल करना।
- ☐ कोयले तथा तेल के बजाय प्राकृतिक गैस का बिजली उत्पादन में ज्यादा इस्तेमाल करना।
- ☐ स्थायी ऊर्जा (सूरज, हवा, पानी से बनने वाली बिजली) या नवीकरणीय ऊर्जा के इस्तेमाल को योजनाबद्ध तरीके से फैलाना।
- ☐ साफ कोयले की तकनीक का विकास करके इसे बड़े स्तर पर लागू करना।

जर्मनी की संसद के अनुरोध पर 2002 में इस विषय पर एक गहन अध्ययन हुआ। इस अध्ययन से यह प्रकट हुआ कि अलग रणनीति तथा उपकरणों का श्रृंखलाबद्ध इस्तेमाल करके जर्मनी जैसा औद्योगिक देश 21वीं सदी के मध्य तक अपने उत्सर्जन में 80 प्रतिशत कटौती का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। इस अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकला कि ऊर्जा कार्यकुशलता की बेहतरी के साथ–साथ नवीकरणीय (स्थायी) ईंधन का भी बड़े स्तर पर इस्तेमाल बहुत जरूरी है। इसकी तुलना में इस तर्क का किसी ने समर्थन नहीं किया कि जलवायु सुरक्षा की सफलता के लिए परमाणु ऊर्जा का विस्तार जरूरी है।

परमाणु उद्योग जलवायु परिवर्तन तथा धरती के बढ़ते तापमान का हौवा खड़ा करके इस धरती को ही परमाणु विकिरण से बर्बाद करने पर तुला है। परमाणु उद्योग का जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग से कुछ लेना–देना नहीं है। वह तो बस जल्दी से जल्दी परमाणु ऊर्जा के ताप पर मुनाफे की रोटियां सेंकना चाहता है। धरती को परमाणु ऊर्जा द्वारा महाविनाश के कगार पर धकेल कर जलवायु सुरक्षा की बात करना परमाणु उद्योग के दोगलेपन को ही दर्शाता है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

एटमी बिजली के उत्पादन की प्रक्रिया अपने हरेक चरण में मानव स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालती है। भारत में जहां हजारों लोग हैजा, मलेरिया इत्यादि बीमारियों से हर साल मारे जाते हैं वहीं करोड़ों लोग अभी भी प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं का ढांचा पूरी तरह से चरमराया हुआ है। ऐसे हालात में रेडियोविकिरण के खतरे पैदा करके भारत सरकार लाखों–करोड़ों लोगों की जिंदगी दांव पर लगा रही है। सिर्फ यह कह कर सरकार पल्ला नहीं झाड़ सकती कि हमारे परमाणु ऊर्जा संयंत्र पूरी तरह से सुरक्षित हैं। अभी हाल ही में जयपुर में इंडियन ऑयल के डिपो में लगी भयानक आग ने सरकार के किसी भी दुर्घटना से निपटने के दावे की पोल खोल दी है। सुरक्षा विशेषज्ञों ने इस आग को भाग्य के सहारे छोड़ दिया। इस बात की कल्पना करके ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि अगर यह हादसा किसी परमाणु ऊर्जा संयंत्र में हुआ होता, तो हमारी 'सक्षम सरकार' कितने बेकसूर इंसानों को मरने के लिए उन्हें भाग्य के सहारे छोड़ देती। जब स्वाइन फ्लू जैसी बीमारी से ही निपटने में सरकार को पसीना आ गया तो परमाणु दुर्घटना की स्थिति में क्या होगा? इसका अंदाजा कोई भी लगा सकता है।

एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र यदि सामान्य गति से भी काम कर रहा है तो भी वह बिजली पैदा करने की प्रक्रिया में लगातार भारी मात्रा में विकिरण छोड़ता है। यूरेनियम की खदान में काम करने वाले फेफड़े के कैंसर का शिकार हो जाते हैं। खदान से जो रेडियोएक्टिव कचरा निकलता है उसे खदानों के करीब खुली हवा में छोड़ दिया जाता है।

ये रेडियोएक्टिव कचरा हवा, पानी और जमीन को तो प्रदूषित करता ही है, साथ ही आस–पास रहने वाले करोड़ों लोगों के स्वास्थ्य पर खतरनाक प्रभाव डालता है। रियक्टर के ईंधन टैंक को ठंडा रखने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला रेडियोएक्टिव पानी लगातार आस–पास की झीलों, नदियों तथा समुद्र में बहा दिया जाता है। इस तरह बगैर किसी दुर्घटना के भी रेडियोएक्टिव तत्वों का विनाशक वातावरण में, भोजन उत्पादन करने की प्रक्रिया में पहुंच जाता है जिसके फलस्वरूप रेडियोएक्टिव तत्व मानवीय शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। विकिरण की भारी खुराक रेडिएशन सिकनेस पैदा कर देती हैं जिससे प्रभावित व्यक्ति की तत्काल मौत हो जाती है। परमाणु प्रतिष्ठानों में जो व्यक्ति काम करते हैं उन पर भी कैंसर का खतरा मंडराता रहता है। रेडिएशन के सम्पर्क में आने पर कैंसर, ल्यूकेमिया और अन्य आनुवांशिक गड़बड़ियां पैदा होती हैं जिनका सालों तक भी पता नहीं चल पाता।

परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का जहरीला कचरा

परमाणु ऊर्जा संयंत्र जहरीले कचरे के रूप में मौत का सामान भी पैदा करते हैं। एक हजार मेगावाट्स का एक परमाणु संयंत्र सालाना 30 टन बेहद खतरनाक रेडियोधर्मी कचरा पैदा करता है। इस विनाशक सामग्री को सुरक्षित ढंग से ठिकाने लगाने का कोई तरीका नहीं है। इसमें दसियों हजार साल तक रेडियोसक्रियता बनी रहती है। क्योंकि इस कचरे के रेडियोएक्टिव चरित्र को दूर करने का कोई तरीका नहीं है, इसलिए इसके संपर्क में आने पर इंसान तथा अन्य जीवों पर भी हजारों साल तक खतरा बना रहता है। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के अनुसार परमाणु ऊर्जा उद्योग हर साल एक लाख बैरल (एक बैरल में 159 लिटर होता है) के बराबर निम्न तथा मध्यम स्तर' का कचरा तथा इससे भी ज्यादा खतरनाक लगभग 50,000 बैरल 'उच्च स्तर' का कचरा पैदा करता है। इन आंकड़ों में खर्च हो चुका परमाणु ईंधन शामिल नहीं है जो कि उच्च स्तर का कचरा है।

निम्न तथा मध्यम स्तर का कचरा :–

इस श्रेणी में परमाणु ऊर्जा संयंत्र से अलग किए गये कल–पुर्जे शामिल हैं तथा साथ ही इस्तेमाल के बाद फेंकने वाली वस्तुएं जैसे; बचाव की पोशाक, प्लास्टिक, पेपर, धातु, फिल्टर भी इस श्रेणी के कचरे में आती हैं। निम्न तथा मध्यम स्तर का कचरा कुछ मिनटों से लेकर हजारों सालों की अवधि तक रेडियोएक्टिव बना रहता है तथा नियंत्रित परिस्थितियों में इसका भंडारण करके लगातार निगरानी रखनी पड़ती है।

उच्च स्तर का कचरा :–

अत्याधिक खतरनाक उच्च स्तर के कचरे में उच्च स्तरीय रेडियोएक्टिव तत्व शामिल होते हैं। उच्च स्तरीय कचरा दसियों हजारों साल तक रेडियोएक्टिव बना रह सकता है तथा यह बड़ी मात्रा में खतरनाक विकिरण छोड़ता है। यहां तक कि कुछ क्षणों का संपर्क ही विकिरण की खतरनाक खुराक में बदल जाता है। इसीलिए इसे हजारों सालों तक बहुत ही विश्वसनीय तथा सुरक्षित तरीके से रखा जाना जरूरी है। इस धरती पर मानव का अस्तित्व 2 लाख सालों से हैं जबकि प्लूटेनियम को सुरक्षित अवस्था में पहुंचने के लिए 2,40,000 साल लगते हैं। इससे पता चलता है कि परमाणु ऊर्जा उद्योग आने वाली पीढ़ियों को बिजली की रोशनी नहीं बल्कि मौत का अंधियारा ही देगा। इतने लंबे समय तक इस कचरे के सुरक्षित भंडारण का कोई विश्वसनीय तरीका किसी को भी मालूम नहीं है, परमाणु कचरे की समस्या का अभी तक कोई समाधान ढूंढा नहीं जा सका है। इसलिए यह भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी अनैतिक है कि इन रियक्टरों से पैदा होने वाली बिजली का इस्तेमाल करें तथा गंभीर नतीजों को भुगतें।

परमाणु ऊर्जा उद्योग रेडियोएक्टिव कचरे को जमीन की गहराईयों में रखकर इस समस्या को ही दफन करना चाहता है। हालांकि इसके लिए अभी तक एक भी जगह का निर्माण नहीं हुआ है। ऐसी उचित जगह का मिलना असंभव ही दिख रहा है जहां इतने लंबे समय तक यह कचरा सुरक्षित रखा जा सकें। जमीन के नीचे क्या हलचल हो रही है और आने वाले समय में कैसी हलचल रहेगी, इसका अंदाजा लगाना बहुत ही मुश्किल है।

परमाणु कचरे से छुटकारा पाने के लिए शोध–कार्यक्रमों में करोड़ों डॉलर स्वाहा किए जा चुके हैं। मगर इन 'प्रयोगों' का अभी तक कोई ऐसा परिणाम नहीं आया है जिसे समाधान के रूप में अपनाया जा सके। भविष्य में भी ऐसे तरीके तैयार होने की उम्मीद नहीं दिखती जो आर्थिक रूप से टिकाऊ होने के साथ–साथ परमाणु कचरे की समस्या से छुटकारा दिला सके।

निष्कर्ष

आज विश्व के प्रमुख देशों में परमाणु ऊर्जा के इस्तेमाल पर फिर से एक नई बहस शुरू हो गई है। जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग तथा बिजली के संकट ने इस बहस को और तेज कर दिया है। रियक्टर के बड़े धंधेबाज मीडिया में अपने भोंपूओं की मदद से बड़े जोर–शोर से ''परमाणु ऊर्जा के पुनर्जागरण'' का प्रचार कर रहे हैं।

विश्व के ज्यादातर परमाणु ऊर्जा संयंत्र अपने जीवन के आखिरी दिनों में हैं। इनका जीवन काल जल्द ही खत्म हो जायेगा। अगले दस सालों में, विशेषकर इस दशक के बाद परमाणु ऊर्जा की सिकुड़ती उत्पादन मात्रा को ध्यान में रखते हुए कुछ बदलाव करने बहुत जरूरी हो जायेंगे। भविष्य में इस बात का निर्णय करना ही होगा कि नये गैर–परमाणु ऊर्जा संयंत्र बनाये जायें या फिर परमाणु ऊर्जा पर आधारित बिजली उत्पादन का अधिक विस्तार किया जाये। कुछ बड़े देशों में इस बात पर सवाल उठने लग गये हैं कि वह तेजी से बुढ़ाते अपने रियक्टरों से उनके तय जीवन काल के बाद भी उत्पादन करें या नहीं। पुराने रियक्टरों की अवधि खत्म होने के बाद इनका नवीनीकरण करवा लेना बिजली मुहैया कराने वाली कंपनियों के लिए एक आकर्षक विकल्प है क्योंकि करोडों के निवेश के बिना भी इन पुराने रियक्टरों की सस्ती उत्पादन लागत से वे बड़ा मुनाफा कमा सकते हैं। इन कंपनियों के प्रबंधक इन पुराने रियक्टरों में न रोके जाने वाले खतरों को अपने ही अंदाज में देखते हैं। खासकर अपनी ही कंपनी द्वारा चलाये जा रहे परमाणु ऊर्जा संयंत्रों में तो वे गंभीर दुर्घटना की उम्मीद बिल्कुल ही नहीं रखते। उनकी यही बात जनता के हितों के खिलाफ जाती है। अगर सभी परमाणु ऊर्जा संयंत्रों को उनकी तय अवधि से ज्यादा चलाया

जाये तो निःसंदेह खतरों की संभावना भी उतनी ही बढ़ेगी।

परमाणु महाविनाश का खतरा अभी भी बना हुआ है। सुरक्षित रियक्टर का वादा अभी भी सिर्फ हवा में ही तैर रहा है। आतंकवाद की नई चुनौतियों और खतरों ने इस तकनीक को अशांत, तनावग्रस्त तथा अस्थिर क्षेत्रों तक पहुंचा दिया है। वैश्विक स्तर पर परमाणु ऊर्जा से बिजली उत्पादन करने के विस्तार कार्यक्रम को समय से पहले ही यूरेनियम की कमी का सामना करना पड़ेगा। परमाणु कचरे को ठिकाने लगाने की समस्या अभी भी बनी हुई है। इसका अभी तक कोई समाधान ढूंढा नहीं गया है। इसके अलावा परमाणु ऊर्जा जलवायु परिवर्तन के संकट का भी कोई समाधान नहीं कर सकती। भले ही 2050 तक इसकी उत्पादन क्षमता तिगुनी हो जाये तो भी यह जलवायु पर साधारण असर ही डालेगी। परमाणु ऊर्जा संयंत्रों की अपर्याप्त क्षमताओं, विशाल खर्चों और असाधारण खतरों को देखते हुए इसकी उम्मीद भी रखना बहुत ही गैरजिम्मेदाराना तथा अव्यावहारिक होगा।

अभी जो परमाणु ऊर्जा संयंत्र काम कर रहे हैं उनके 'जीवन–काल' के खत्म होने की अवधि तेजी से नजदीक आ रही है। मौंजूदा स्थिति हमें यह स्वाभाविक संकेत दे रही है कि आने वाले दशकों में परमाणु ऊर्जा के उत्पादन में जबरदस्त गिरावट आयेगी। हमारे सामने ऐसे संतुलित अनुमान तथा आकलन हैं जो हमें बताते हैं कि वैश्विक ऊर्जा रणनीति मुख्यतः ऊर्जा प्रबन्ध, उद्योग तथा यातायात क्षेत्र में क्षमता संर्वद्धन तथा नवीकरणीय उर्जा के विकास पर निर्भर है। सिर्फ यही रणनीति जलवायु विशेषज्ञों की ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती की माँग को पूरा कर सकती है और इसके लिए परमाणु ऊर्जा की कोई जरूरत नहीं है।

नये परमाणु ऊर्जा संयंत्र उन्हीं देशों में लग रहे हैं जहां पर उन्हें सरकारें आर्थिक सहायता दे रही हैं। मगर उदारवाद तथा खुले बाजार के इस दौर में उनके लिए भी लंबे समय तक सस्ती दरों पर बिजली बेचकर मुनाफा कमाना मुश्किल होगा। भारत जैसे सघन आबादी वाले देश में परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के विस्तार तथा यूरेनियम के खनन के बहुत घातक परिणाम होंगे। देश की खाद्यान्न सम्प्रभुता को सरकार पहले ही दाँव पर लगा चुकी है। विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण तेजी से हो रहा है। किसान आत्हत्याएं कर रहे हैं, आदिवासियों को उनकी जमीन और जंगल से जबरदस्ती हटाया जा रहा है। वंचितों को और वंचित करने की प्रक्रिया

बहुत तेजी से चल रही है। सरकार भी खुलकर अब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के समर्थन में बहुत आक्रामक रूप से सामने आ गई है। अब 'सस्ती बिजली' के नाम पर सरकार जमीन हथियाने की फिराक में है। इसके लिए सरकार कानून में भी फेरबदल कर रही है। इसका ताजा उदाहरण मेघालय का है। मेघालय में 1972 में एक कानून बना था, इस कानून के अनुसार गैर–आदिवासी राज्य में जमीन नहीं खरीद सकते और न ही उन्हें जमीन का हस्तांतरण किया जा सकता है। इस कानून की वजह से यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड अपनी यूरेनियम खनन गतिविधियों को राज्य सरकार और जिला परिषद की अनुमति के बगैर आगे नहीं बढ़ा सकता। इस दिक्कत को दूर करने के लिए अब मेघालय सरकार पर दबाव डाला जा रहा है कि वह मॉथाबाह के यूरेनियम सम्पन्न इलाके को जमीन हस्तांतरण कानून के दायरे से मुक्त करे ताकि यूसीआईएल अपने यूरेनियम खनन के लिए वहां संवर्द्धन इकाई लगा सके।

कांग्रेस सरकार भी लगातार अपना दोहरा चरित्र दिखा रही है। एक तरफ तो कांग्रेस के युवराज राहुल गांधी संसद में बहुत ही भावुक अंदाज में कलावती की चिंता करते हैं कि अगर अमरीका के साथ परमाणु करार नहीं होगा तो कलावती के घर बिजली कभी नहीं आयेगी। वहीं दूसरी तरफ भोपाल गैस हादसे की पच्चीसवीं बरसी के मौके पर कांग्रेस सरकार एक नया विधेयक लाती है। इस विधेयक के अनुसार किसी भी परमाणु दुर्घटना की स्थिति में क्षतिपूर्ति की सीमा 2400 करोड़ रुपये होगी। यानि संयंत्र से चाहे कितना भी बड़ा नुकसान हो वह 2400 करोड़ तक का ही भुगतान करेगा। भोपाल गैस हादसे के पीड़ित अभी भी उचित मुआवजे की लड़ाई लड़ रहे हैं ऐसे में कांग्रेस ने यह विधेयक लाकर भोपाल गैस पीड़ितों के साथ बेहद क्रूर मजाक किया है। इससे कांग्रेस सरकार का असली चरित्र भी सामने आ गया है कि कलावती की चिंता करके अमरीका के साथ परमाणु करार करने वाली सरकार असल में गरीबों, वंचितों, पीड़ितों के प्रति कितनी संवेदनहीन है।

अमरीका के दबाव में कांग्रेस सरकार ने यह फैसला किया है। जाहिर है कि अमरीकी कंपनियां भोपाल गैस हादसे को ध्यान में रखकर ही ऐसे सुरक्षा उपाय अपना रही हैं। विदेशी कंपनियां परमाणु ऊर्जा संयंत्र स्थापित करके मुनाफे की मलाई तो चाटना चाहती हैं मगर हादसे की

जिम्मेदारी लेना नहीं चाहतीं। परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम का विस्तार करने को आतुर हमारे प्रधानमंत्री ने भी पीड़ितों की अनसुनी कर अमरीकी तथा अन्य विदेशी रियक्टर कंपनियों को भारत में तबाही मचाने की पूरी आजादी दे दी है।

हद तो यह है कि भोपाल गैस हादसे से भी सरकार ने कोई सबक नहीं सीखा है।

जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा सरकार ऐसी तकनीक पर खर्च कर रही है जिसका कोई भविष्य नहीं है। परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का विस्तार बहुत ही खतरनाक तथा अव्यावहारिक है। परमाणु संयंत्रों के लिए ईंधन जुटाना आसान नहीं है। भारत यूरेनियम के लिए पूरी तरह से दूसरे देशों पर आश्रित है। परमाणु ऊर्जा तकनीक का इस्तेमाल करने वाले देशों में दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया ही ईंधन के मामले में आत्मनिर्भर हैं। अमरीका के साथ परमाणु समझौते के बाद भले ही भारत सरकार यह सोचकर खुश हो रही है कि अब यूरेनियम का इंतजाम करना आसान हो जायेगा। मगर राजनीतिक परिस्थितियों के बदलते ही यूरेनियम की लगातार सप्लाई भी संभव नहीं होगी, विशेषकर जब ज्यादातर देश अमरीका के इशारों पर नाच रहे हों। ईंधन के बिना यह परमाणु संयंत्र विशालकाय मकबरे बन कर ही रह जायेंगे, जिनका ज़िंदगी भर ध्यान रखना पड़ेगा।

अंत में यही कहा जा सकता है कि परमाणु निर्वाण में मौत तथा बर्बादी के अलावा कुछ नहीं है। परमाणु ऊर्जा संयंत्र भले ही ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में थोड़ी सी कटौती कर दें मगर यह अपने रेडियोएक्टिव कचरे से इस धरती के पारिस्थितिकी ताने–बाने को एकदम चौपट कर देंगे जिससे इंसानों के साथ–साथ दूसरे जीव–जंतुओं तथा पेड़–पौधों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। परमाणु समर्थकों का ''परमाणु पुनर्जागरण'' का दावा सिर्फ कोरी गप्पबाजी है। परमाणु ऊर्जा हमें स्वच्छ रोशनी नहीं बल्कि ऐसा अंधियारा देगी जो आने वाली सदियों तक भी नहीं छंटेगा। बहुत से ऐसे सवाल अभी भी बाकी हैं जिनका जवाब परमाणु जगत को ढूंढना है। इस तकनीक पर अंधा भरोसा नहीं किया जा सकता। यह तो साफ है कि परमाणु ऊर्जा अंधेरे के गर्त में धकेलने वाली तकनीक है, ऐसे में हमें यह तय करना ही पड़ेगा कि ''हम इसके खिलाफ खड़े हों या फिर इसके साथ मरने के लिए तैयार रहें।''

संदर्भः

– न्यूक्लियर पॉवर : मिथ एण्ड रियल्टी – हेनरिक बॉल फाउंडेशन
– नेशनल एलायंस ऑफ एंटी न्यूक्लियर मूवमेंट्स (नाम)
– ग्रीनपीस इंटरनेशनल
– कैगा परमाणु संयंत्र की घटना से उठे सवाल– सुरेन्द्र गडकर
– इंसाफ का इंतज़ार– मृणाल वल्लारी, जनसत्ता

''परमाणु ऊर्जा के समर्थक तथा हमारे राजनेता इन दुर्घटनाओं तथा हादसों से सबक सीखने की बात करते हैं वे परमाणु संयंत्रों की सुरक्षा प्रणाली को ज्यादा सुरक्षित बनाने का वादा करते हैं। मगर ऐसे हादसे पहले भी होते रहे हैं। ऐसी ही एक घटना 1991 में परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा संचालित राजस्थान में रावतभाटा हैवी वॉटर प्लांट में हुई। इस संयंत्र के एक कमरे में हैवी वॉटर से भरे हुए ड्रम रखे थे। इस कमरे में रंगाई–पुताई का काम होना था और इस काम को करने के लिए बाहर से मज़दूरों को बुलाया गया। मज़दूरों ने जब पानी के लिए नल को खोला तो उस नल में पानी नहीं आ रहा था इसलिए उन्होंने ड्रम में रखे पानी का इस्तेमाल किया। पुताई का काम खत्म करके मजदूरों ने अपने ब्रश तथा कूचियों को इसी पानी से साफ किया और यही नहीं अपने हाथ–मुंह धोने के लिए भी उन्होंने ड्रम में रखे पानी का ही इस्तेमाल किया। इसके बाद सभी मज़दूर अपना काम खत्म करके बाहर चले गये। जब यह काम चल रहा था तो उस दौरान कोई भी उच्च अधिकारी निगरानी के लिए वहां नहीं था। जब विकिरण ने अपना खतरनाक रूप दिखाना शुरू किया तब जाकर इन अधिकारियों की आंखें खुलीं मगर तब तक उस कमरे में इतिहास की सबसे मंहगी पुताई हो चुकी थी। ''

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस) प्रतिबद्ध और अनुभवी लोगों का ऐसा समूह है जो स्थानीय एवं व्यापक स्तर पर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मज़बूत करने की दिशा में प्रयत्नशील है।

इस क्रम में जीवनयापन के लिए जूझ रहे व्यक्तियों एवं समुदायों और अपनी अस्मिता को बचाए रखने तथा जनतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्षरत जन समूहों की जानकारी एवं ज्ञान में बढ़ोत्तरी करना पीस का मुख्य सरोकार रहा है।

विगत कुछ वर्षों से पीस समान सोच वाले समूहों और जन संगठनों के बीच संवाद की प्रक्रिया चला कर व्यापक स्तर पर चलने वाले जन आंदोलनों और गठबंधनों की प्रक्रिया को भी मज़बूत करने हेतु प्रयत्नशील है।

मौजूदा पुस्तिका की तर्ज़ पर ही हमने पहले भी आम जन जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर शिक्षणसामग्री का निर्माण व प्रकाशन किया है। इस क्रम में कुछ महत्वपूर्ण सामग्री हैः

- ज्ञान की पूँजी पर पूँजी का शिकंजा
- पूँजी के निशाने पर पानी
- बाज़ारीकरण के दस साल
- The Noose is Tightening-AOA (July Framework)
- GATS (Primer)
- नकेल कसती जा रही है
- कहीं पर निगाहें, कहीं पर निशानाः वन अधिकार अधिनियम 2006
- उड़ीसा के जनसंघर्ष : सबक और चुनौतियाँ
- People's Struggles of Orissa : Lessons and Challenges

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
ए–124/6, दूसरी मंजिल,
कटवारिया सराय, नई दिल्ली–110016
फोनः 011–26968121/26858940
ईमेलः peaceact@vsnl.com

केवल सीमित वितरण के लिए